वो दुनिया जहाँ बंदूकें सजी हों, बस अजायबघरों में: चौवालिसवाँ न्यूज़लेटर (2024)

हवा में तैरते हुए, यू. दगवसंबू (मंगोलिया), 2023.

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान की ओर से अभिवादन।

1919 में विंस्टन चर्चिल ने **लिखा**, 'असभ्य कबीलों पर ज़हरीली गैस के इस्तेमाल का मैं पुरज़ोर समर्थक हूँ'। चर्चिल उस समय ब्रिटेन के युद्ध और वायु क्षेत्र के मंत्री थे और उत्तरी इराक़ में कुर्द विद्रोह से जूझ रहे थे। उनका मत था कि इस तरह की गैस के इस्तेमाल से 'डर का माहौल भी पैदा होगा और इससे प्रभावित लोगों पर लंबे समय के लिए कोई गंभीर परिणाम भी नहीं रहेंगे'।

हथियार के रूप में गैस के इस्तेमाल का चलन पहली बार फ्रांस ने अगस्त 1914 (प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान) में आँसू गैस का प्रयोग करके शुरू किया। इसके बाद अप्रैल 1915 में जर्मनी ने क्लोरीन का इस्तेमाल किया और दिसंबर 1915 में फास्जीन का (जो फेफड़ों में घुसकर दम घोंट देती है)। 1918 में क्लोरीन और फास्जीन को हथियार में बदलने वाले डॉ फ्रिट्ज हैबर (1868-1934) को **रसायन शास्त्र में नोबेल पुरस्कार** दिया गया। दुखद है कि डॉ फ्रिट्ज हैबर ने ही हाइड्रोसाइनाइड कीटनाशक **ज़ाइक्लोन ए और ज़ाइक्लोन बी** भी तैयार किए, जिनका इस्तेमाल होलोकॉस्ट में साठ लाख यहूदियों को मारने के लिए किया गया था – जिसमें उसके कुछ अपने परिजन भी शामिल थे। 1925 की जेनेवा प्रोटोकॉल के ज़रिए 'युद्ध में दम घोंटने वाली, ज़हरीली या अन्य प्रकार की गैसों तथा जैविक हथियारों' के प्रयोग पर **प्रतिबंध** लगा दिया गया। इसका विरोध करते हुए चर्चिल ने दावा किया कि ऐसे हथियार 'जिन पर इस्तेमाल होते हैं

उन पर इनके कोई गंभीर और स्थाई परिणाम नहीं होते'। उसका यह विश्लेषण युद्ध के प्रोपेगेंडा के अलावा और कुछ नहीं था, जो उन 'असभ्य कबीलों' के लोगों की जान की परवाह नहीं करता जिन पर ये हथियार इस्तेमाल किए जाते हैं। एक गुमनाम भारतीय सैनिक ने शायद 1915 के अपने एक खत में **लिखा**, जब वह यूरोप में गाद और गैस के बीच जद्दोजहद कर रहा था : 'भूले से भी इसे युद्ध मत समझना। यह युद्ध नहीं है। यह दुनिया का अंत है'।

.

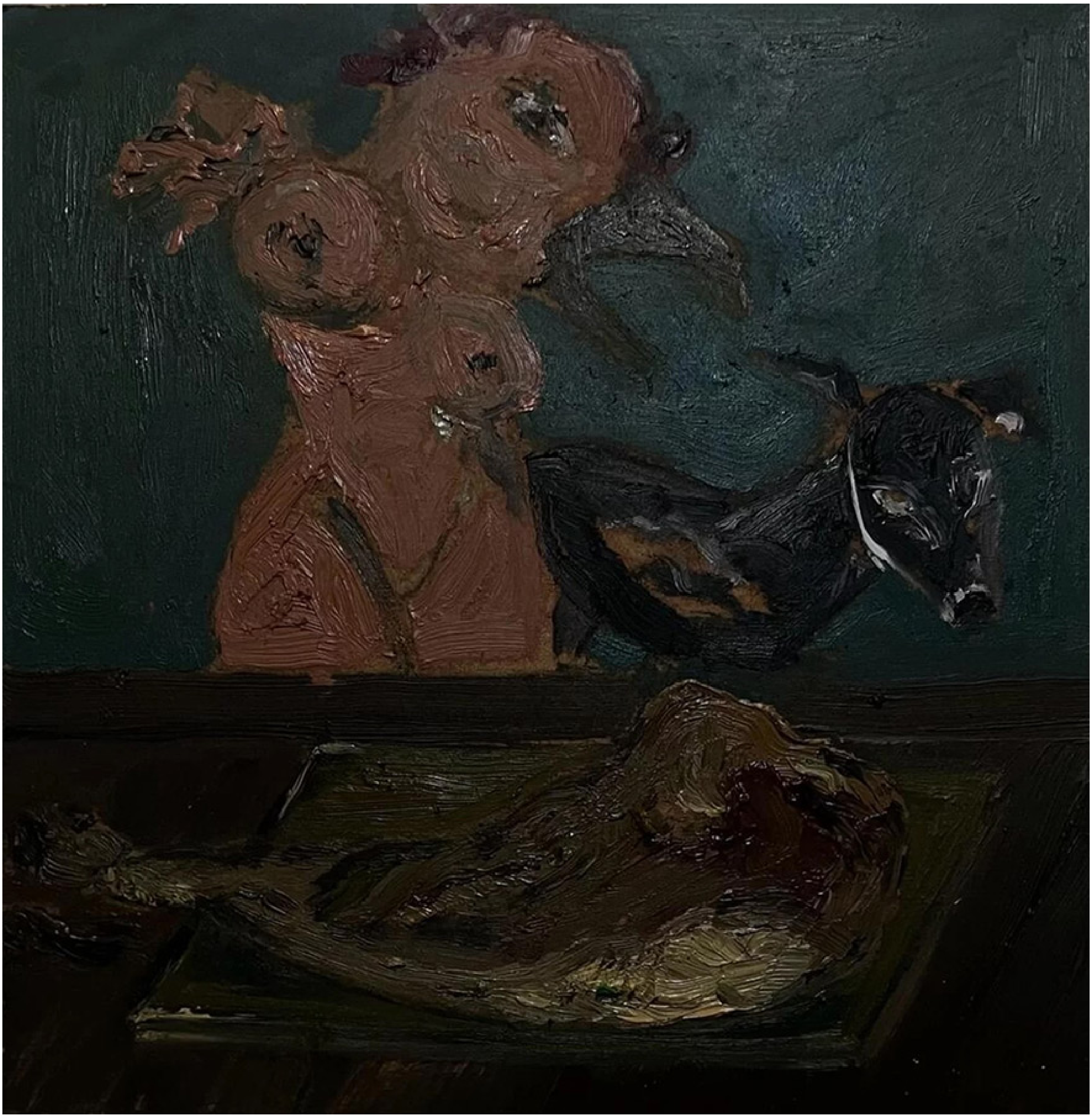

फ़र्श और छत के दरमियान, मैता अब्दुल्ला (संयुक्त अरब अमीरात), 2023.

युद्ध के बाद वर्जीनिया वूल्फ़ ने अपने उपन्यास मिसेज़ डेलॉवे में एक भयग्रस्त भूतपूर्व सैनिक की चर्चा की है, जिसने कहा

'दुनिया डगमगाई, कांप उठी और मानो आग की लपटों में स्वाहा हो ही जाने वाली थी'। यह भाव सिर्फ उस भूतपूर्व सैनिक के नहीं, जो पोस्ट ट्रॉमैटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर [एक तरह का मानसिक रोग जो किसी बड़े आघात के बाद के मानसिक तनाव से होता है] झेल रहा था : ऐसा हर उस व्यक्ति ने महसूस किया जो इस डर में जिया है कि दुनिया आग में झोंक दी जाएगी और वह कुछ नहीं कर पाएगा।

ये शब्द आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जब यूक्रेन में नाटो की उकसाने वाली कार्रवाई की वजह से दुनिया संभवत : **न्यूक्लियर विन्टर** [[परमाणु युद्ध के जलवायु पर पड़ने वाले प्रभाव] का ख़तरा झेल रही है और साथ ही दुनिया देख रही है कि कैसे संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) और इज़राइल फिलिस्तीन लोगों का **जनसंहार कर** रहे हैं। आज ये शब्द याद करके हम सोच में पड़ जाते हैं: क्या हम इस एक सदी लंबे बुरे सपने से उठ पाएंगे और समझ पाएंगे कि जंग के बिना भी ज़िंदगी चल सकती है ? यह सोच किसी ठोस सबूत नहीं बल्कि उम्मीद के भ्रम की वजह से है। हम बर्बादी और मौत देखकर थक चुके हैं। हमें हमेशा के लिए युद्ध का अंत चाहिए।

तरबूज़ बेचने वाले, इस्माइल अल-शेखली (इराक़), 1958.

अक्टूबर में ब्रिक्स ने अपने सोलहवें सम्मेलन में कजान घोषणा जारी की, जिसमें 'बढ़ती हिंसा' और 'दुनिया के विभिन्न भागों में चल रहे सशस्त्र संघर्षों' को लेकर चिंता जताई गई। ब्रिक्स के देश इस नतीजे पर पहुँचे कि जंग से बेहतर है बातचीत। इस घोषणा के सार में 1961 में यूएस राष्ट्रपति जॉन एफ़. कैनेडी के हथियार नियंत्रण सलाहकार जॉन मैक्क्लॉय

और संयुक्त राष्ट्र में सोवियत राजदूत वालेरियन ए. ज़ोरिन के बीच हुए बातचीत की अनुगूँज है। पूर्ण निरस्त्रीकरण के लिए मैक्क्लॉय-ज़ोरिन समझौता में जिन नियमों को स्वीकार किया गया उनमें **दो अहम** बिंदु थे : पहला, 'निरस्त्रीकरण हर समय और पूरी तरह' होना चाहिए तथा दूसरा, युद्ध 'अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने का ज़रिया' नहीं होना चाहिए। आज ये दोनों ही विचार अजेंडे से गायब हैं। यूएस के नेतृत्व में ग्लोबल नॉर्थ आग उगलते दानव की तरह बर्ताव कर रहा है और अपने विपक्षियों से बातचीत कर हल नहीं निकालना चाहता। 1991 में सोवियत संघ के **विघटन** के बाद जो अकड़ [यूएस में] आ गई थी वह अब तक गई नहीं है। कजान में हुई प्रेस वार्ता में रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने बीबीसी के स्टीव रोसेंबर्ग को **बताया** कि ग्लोबल नॉर्थ के नेता अपनी मीटिंगों में 'हमेशा [रुसियों] को उनकी जगह दिखाना' चाहते हैं और 'रूस को दूसरे दर्जे का राष्ट्र' बना देना चाहते हैं। नॉर्थ और साउथ का रिश्ता इसी खुद को श्रेष्ठ समझने के अहसास से बयां होता है। दुनिया शांति चाहती है और शांति के लिए बातचीत ज़रूरी है जो खुले मन से और बराबरी से की जाए।

दाता समंदर, रीम अल जिआली (सूडान), 2016.

शांति को दो अलग ढंग से समझा जा सकता है : निष्क्रिय शांति और सक्रिय शांति। निष्क्रिय शांति तब होती है जब बाकी समय के मुकाबले लड़ाइयाँ कम हों या न हों लेकिन दुनियाभर के देश अपनी सैन्य ताक़त बढ़ाने में लगे होते हैं। आज कई देशों का सैन्य ख़र्च बेहद बढ़ चुका है : बंदूकें चलें या न चलें, खरीदी ज़रूर जा रही हैं। यह एक निष्क्रिय शांति है।

सक्रिय शांति तब होती है जब समाज की बहुमूल्य संपदा मानवता के सामने खड़ी समस्याओं को सुलझाने में लगाई जाती हैं। सक्रिय शांति सिर्फ बंदूकों का शांत होना और सैन्य ख़र्च ख़त्म होना नहीं है। इसका अर्थ है ग़रीबी, भूख, अशिक्षा और निराशा जैसी समस्याओं को ख़त्म करने के लिए सामाजिक व्यय को बहुत ज्यादा बढ़ाया जाना। मानवता को जो सामाजिक समस्याएँ इतिहास से विरासत में मिली हैं या जिन्हें वह आज पुनर्जीवित कर रही है, उनसे उबर पाने को भी विकास कहा जा सकता है और सक्रिय शांति इसकी एक अनिवार्य शर्त है। समाज द्वारा पैदा की गई संपदा अमीरों की जेब भरने और जंगी मशीनों में तेल डालने के लिए नहीं, बल्कि लोगों के खाली पेट भरने के लिए उपयोग की जानी चाहिए।

हम युद्धविराम के साथ-साथ और भी बहुत कुछ चाहते हैं। हम एक ऐसी दुनिया चाहते हैं जहाँ सक्रिय शांति और विकास हो।

हम एक ऐसी दुनिया चाहते हैं जहाँ हमारी अगली नस्लें बंदूकें सिर्फ अजायबघरों या संग्रहालयों में देखें।

मेहंदी की परियाँ, हसन हज्जाज (मोरक्को), 2010.

1968 में यूएस के कम्युनिस्ट कवि म्यूरिएल रुकेसर ने कविता 'मैंने विश्वयुद्धों की पहली सदी देखी है' लिखी। जब मैं किसी अखबार में 'लापरवाही से लिखी खबर' पढ़ता हूँ तो मुझे यह लाइन अक्सर याद आती है और रुकेसर का यह ख़याल भी कि क्या हम कभी इस स्मृतिलोप से उबर पाएंगे या नहीं :

> मैंने विश्वयुद्धों की पहली सदी देखी है।
> अक्सर सुबहों में मुझे घेर लेता है कोई पागलपन
> अखबार आता है अपनी ग़ैर ज़िम्मेदाराना ख़बरें लिए,
> कई और माध्यमों से भी परोसी जाती हैं ख़बरें
> और उनके बीच घुसे रहते हैं सामानों के विज्ञापन हम नाचीज़ों की ख़ातिर।
> मैं किसी दूसरे डिवाइस से कॉल करती हूँ अपने दोस्तों को ;
> वो भी होंगे इस सबसे मेरी ही तरह पागल।
> धीरे-धीरे मैं बढ़ती हूँ कागज़ और क़लम की ओर,
> और गढ़ती हूँ कविता अपने ही जैसे तुच्छ लोगों और अजन्मों के लिए।
> दिन में मुझे याद आते हैं वो मर्द और औरतें,
> जाँबाज़, जो फैले हैं दूर-दूर और लगाते हैं निशाँ,
> बेनाम तरीकों, अकल्पनीय मूल्यों का जीवन जीते हुए।
> जब अंधेरा गहराता है और चिराग़ होते हैं बुलंद,
> हम उनके बारे में सोचने की करेंगे कोशिश, एक-दूजे को खोजने की भी,
> अमन बहाल करने की। मोहब्बत करेंगे, शिकवे मिटायेंगे
> हम जागेंगे नींद से, दूसरों के साथ,
> खुद अपने साथ। हम करेंगे पूरी कोशिश
> अपनी हदों तक जाने की, खुद से परे जाने की,
> आसाइशों को छोड़ने की, एक बार पूरी तरह से जागने की।
>
> मैंने इन युद्धों की पहली सदी देखी है।

क्या हम ख़ुद से परे जा सकते हैं ?

सस्नेह,

विजय